

## भारतीय संस्कृति और सभ्यता एक समीक्षात्मक अध्ययन

संस्कृति है क्या ? शब्दकोश उलटने पर इसकी अनेक परिभाषाएं मिलती हैं। एक बड़े लेखक का कहना है कि “ संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कहीं गई हैं, उनसे अपने आप को परिचित करना संस्कृति है। ” एक दूसरी परिभाषा में यह कहा गया है कि “ संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है। ” यह “ मन, आचार अथवा रूपों की कृष्ण परिष्कृति या शुद्धि ” है। यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है। इस अर्थ में, संस्कृति कुछ ऐसी चीज का नाम हो जाता है, बनियादी और अंतरराष्ट्रीय है। फिर, संस्कृति के कुछ राष्ट्रीय पहलू भी होते हैं। और इसमें कोई संदेह नहीं कि अनेक राष्ट्रों ने अपना कुछ विशिष्ट व्यक्तित्व तथा अपने भीतर कुछ खास ढंग के मौलिक गुण विकसित कर लिए हैं।<sup>1</sup>

किसी भी देश की संस्कृति उस देश की धरोहर होती है। सामान्य शब्दों में संस्कृति का तात्पर्य मानव के व्यवहार से लगाया जाता है। मानव एक सामाजिक प्राणी है मानव के व्यवहारों को ही संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति के अभाव में मानव पशु के समान होता है संस्कृति मानव समूह के सभी रीति-रिवाजों व परंपराओं से निर्मित होती है।<sup>2</sup>

विश्व की विशिष्ट संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति का अति महत्वपूर्ण स्थान रहा है। बाह्य आक्रांताओं का लक्ष्य भारतीय संस्कृति को समाप्त कर अपनी संस्कृति को थोपना था। यह क्रिया कई शताब्दियों से चल रही है, किंतु यह मात्र इस धरा विशेष की संस्कृति ही है कि उन विदेशी आक्रांताओं को भी पुत्रवत् स्थान देकर उन्हें अपनी सांस्कृतिक विरासत से अभिभूत कर अपने आंचल में समय लिया। उनकी संस्कृतियों के उज्ज्वल पक्ष को ग्रहण करके स्वयं को और समृद्ध बनाकर संस्कृतियों की जननी बस इस देश को जगतगुरु के पद पर प्रतिष्ठित किया।

भारतीय संस्कृति एक और जहां धार्मिक, प्रतीकात्मक एवं बौद्धिक है, वहीं दूसरी ओर यह मानवीय, सामाजिक व अनुभूतिपरक भी है। इसकी एक राष्ट्रीय परंपरा रही है जो सबविचारों एवं क्रियाओं से पोषित होती है। इसकी संस्कृतिक विरासत में सामाजिक गुण निहित हैं क्योंकि यह प्रतिफल विश्वास एवं आस्था का उजास बिखेरती, हताशा को आशा में बदलती, असंतोष को भस्म करती विश्व उद्यान का सर्वोत्तम पुष्प है। ऋग्वेद काल से लेकर वर्तमानतक भारतीय संस्कृति अभी अविच्छिन्न रही है। मात्र भारतीय संस्कृति विश्वा में ऐसी अनूठी संस्कृति है जो व्यक्ति को अवसाद में भी निरंतर कर्म के लिए प्रोत्साहित करती है क्योंकि मनुष्य के अधिकार में कर्म है न कि कर्मफल “ कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ”।

यद्यपि ऐतिहासिक एवं धार्मिक प्रभावों के परिणाम स्वरूप भारतीय संस्कृति में किंचित उतार-चढ़ाव भी होते रहे हैं जो इसकी प्रगतिशीलता के द्योतक हैं, फिर भी आज जबकि अन्य प्राचीन संस्कृति

या प्रायः विलुप्त हो चुकी है, भारतीय संस्कृति जीवित ही नहीं, अपितु समय के साथ पुष्ट तो हुई ही, साथ ही इसकी उपयोगिता भी आबाध रूप से बृहत्तर होती गयी ।

भारतीय संस्कृति का संबंध बाह्य जीवन से गौण, किंतु आंतरिक से विशेष है; फलस्वरूप यह मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करती है । भौतिकता के इस युग में लोगों के बढ़ते हुए मानसिक तनाव और अंतरद्वंद का एकमात्र समाधान भारतीय संस्कृति के दर्शन तथा आध्यात्म में निहित है जो भारतीय संस्कृति की अपनी एक विशिष्टता है ।<sup>3</sup>

किसी भी सभ्यता को समझने के लिए सभ्यता के विस्तार क्षेत्र के भूगोल और स्थलाकृति पर दृष्टि डालनी आवश्यक होती है । भारत की सभ्यता के मर्म को पहचानने के लिए सबसे पहले हमें पश्चिम में हिंदुकुश से लेकर असम तक फैले हुए २,००० किलोमीटर लंबे, विशाल, विराट और संसार के सबसे ऊंचे पर्वतराज हिमालय को पहचानना होगा जो भारत को उत्तर की बर्फीली हवाओं से तो बचाता ही है । अरब सागर और बंगाल की खाड़ी से उठने वाले ग्रीष्म ऋतु के बादलों को ऊपर और बरसने के लिए मजबूर भी करता है । हिमालय की चोटियों और घाटियों से वह कर जाने वाले इस पानी ने ही भारत की सभ्यताओं को आदिकाल से आज तक सींचा है ।

भारत में मानव-सभ्यता का आरंभ इसा से १,००,००० वर्ष पहले हुआ । जब यह बात भारतीय शास्त्रों और पुराणों के आधार पर कही जाती थी तो विदेशी ही नहीं भारतीय शिक्षित जन भी हंसते थे, लेकिन जब डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर ने भोपाल से होशंगाबाद के बीच विंध्याचल की दुर्ग सरीखी चट्टानों में भीमबेटका के शैलाश्रय की खोज की, तथा वहां से प्राप्त औजारों और अन्य वस्तुओं का काल निर्धारण वैज्ञानिकों ने कराया तब संसार भर के पुरातत्वविदों को को यह स्वीकार करना पड़ा कि भारत में निश्चय ही ईसा से १,००,००० वर्ष पूर्व भीमबेटका में मानव बस्ती रही होगी । उसके बाद भीमबेटका की खुदाई में डॉ. वाकणकर को एक मानव खोपड़ी मिली जिसकी वैज्ञानिक जांच के बाद यह घोषित किया गया कि वह खोपड़ी कम से कम २०,०००० वर्ष पुरानी है, अर्थात् उत्तर प्रस्तर युग की । इस प्रकार भारत की सभ्यता अर्थात् भारत की मानव-सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में सबसे पुरानी ठहरती है ।<sup>४</sup>

जैसे पंडितों में इस बात को लेकर मतभेद है की आर्य, मूलतः, भारतवासी थे अथवा भारत में वे बाहर से आए थे, वैसे ही यह बात भी निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती कि द्रविड़ इस देश के मूल-निवासी हैं अथवा इस देश में वे किसी और देश से आए हैं । आर्य और द्रविड़ दोनों प्रकार के लोग इस देश में अनंत काल से रहते आए हैं और हमारे प्राचीनतम साहित्य में इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता की ये दोनों जातियां बाहर से आईं अथवा इन दोनों के बीच कभी लड़ाइयां भी हुई थी । आर्यों का संघर्ष दास और असुर जाति के लोगों से हुआ था,

इसका थोड़ा-बहुत प्रमाण है, किंतु यह दास और असुर कौन थे, इस विषय में हमारे पास सुनिश्चित प्रमाण नहीं है । आर्यों ने अपने शत्रु को अनास भी कहा है, किंतु अनास से कौन जाति संकेतित होती है, इसका निर्धारण सरल नहीं है । प्रजाति या रस (Race) के सिद्धांत हमारे देश में अंग्रेजों के आगमन के बाद प्रचलित हुए, अन्यथा इस बात का कोई भी प्रमाण नहीं है कि आर्य और द्रविड़ जातियों के लोग एक-दूसरे को विजातीय समझते थे। मैथिल, गौड़, कान्यकुब्ज आदि की तरह, द्रविड़ शब्द भी यहां भौगोलिक अर्थ देनेवाला था । अतएव, जाति के अर्थ में आर्य और द्रविड़ शब्दों के चलन को बिल्कुल अर्वाचीन मानना चाहिए ।

पीछे की ओर दृष्टि डालकर इतिहास की अतल गहराइयों में जाने पर भी हम यही देखते हैं कि आर्य और द्रविड़ नाम से अभिहित किये जानेवाले भारतवासियों का धर्म एक है, संस्कार एक है, भाव और विचार एक है तथा जीवन के विषय में उनका दृष्टिकोण भी की एक है। शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन और बौद्ध, ये आर्य भी थे और द्रविड़ भी । इसी प्रकार, साहित्य रचना में भी, शैली और भाव में, इन दोनों प्रकार के लोगों में पूरी समानता मिलती है । इसके सिवा, उत्तर और दक्षिण में जो प्राचीन मंदिर और मूर्तियां, संगीत और बाजे मिलते हैं, उनमें स्थानीय विशेषताएं तो हैं, किंतु जातीय संस्कार-गत भेद बिल्कुल नहीं है । भेद है तो सिर्फ यह की द्रविड़ों की अपेक्षा आर्यों में गौर वर्णवाले लोग कुछ अधिक हैं तथा जो लोग द्राविड़ भाषाएं बोलते हैं, वे दक्षिण में रहते हैं । बिहार में ओरॉव जाति की भाषा और बलूचिस्तान में ब्रहुई जाति की बोली, उत्तर भारत में दो ही बोलीयां हैं, जिनका द्राविड़ भाषा-समूह से कुछ साम्य बताया जाता है । यदि इस बात पर विचार करें कि आर्यों के साहित्य में धर्म का जो रूप वर्णित है, संस्कृति की जो व्याख्या विद्यमान है, उसका वास्तविक प्रमाण कहाँ है, तब तो उसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अब द्रविड़ में ही मिलेंगे और इस अनुमान के लिए बहुत बड़ा आधार निकल आएगा कि यदि द्रविड़ भारत के आर्य पूर्व निवासी हैं, तो हिंदू-संस्कृति भी, अधिकांश में, आर्यों से पूर्व की वस्तु है । आर्य संस्कृति की दीक्षा द्रविड़ों को आर्यों से मिली, किंतु गुरु तो उसे पूरी पवित्रता से जुगा नहीं सका, हां, शिष्य उसे भली-भांति जुगाए हुए हैं, यह अनुमान उतना प्रबल नहीं होगा, जितना यह अनुमान की द्रविड़ों के बीच प्रचलित धर्म को आर्यों ने अपने भीतर पचा लिया ।<sup>9</sup>

भारत की अन्य जातियों ने आर्यों के द्वारा चलाई गई जाति-प्रथा को स्वीकार कर लिया, यह हमारे देश में संस्कृति-समन्वय की ओर पहला कदम था । इससे इतना हुआ कि आर्य, द्रविड़, ऑस्ट्रीक और नीग्रो तथा सभी मंगोल खानदानों के लोग एक समाज के सदस्य हो गए, जिसका नाम आगे चलकर हिंदू-समाज पड़ा । लेकिन, समन्वय की बातें यही नहीं रुकी और न यही हुआ कि आर्यों ने अपनी संस्कृति बाकी लोगों पर लाद दी । आर्य अपनी संस्कृति का प्रचार करने को उत्सुक थे, यो ठीक है, लेकिन, सभी जातियों का जब एक समाज हो गया, तब सबकी आदतें, सबके रस्म-रीवाज और सबके धर्म एक-दूसरे को प्रभावित करने लगे तथा इस प्रभाव में आर्य भी नहीं बच सके । बल्कि, अचरज तो यह है की आर्य जिन बातों पर खास तौर से जोड़ देते थे, वह बातें पोथियों और पंडितों तक ही सीमित रह गई और विशाल जनता ने, अधिकांश में, उन बातों को अपना

लिया जो बातें द्रविड़-समाज में प्रचलित थीं अथवा जो रिवाज अन्य आर्य-जातियों के लोगों में चले आ रहे थे । हिंदू-धर्म और हिंदू-संस्कृति का आज जो रूप है, उसके भीतर प्रधानता उन बातों की नहीं है, जो ऋग्वेद में लिखी मिलती है । बल्कि हमारे समाज की बहुत-सी रीतियाँ और हमारे धर्म के बहुत-से अनुष्ठान ऐसे हैं, जिनका उल्लेख वेदों में नहीं मिलता । और जिन बातों का उल्लेख वेदों में नहीं मिलता, उनके बारे में विद्वानों का मत है कि या तो वे आर्य-सभ्यता की देन हैं अथवा उनका विकास आर्यों के आने के बाद आर्य और आर्य-तर, दोनों संस्कृतियों के मेल से हुआ है । डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी का तो यहां तक कहना है कि हिंदू-संस्कृति के आधे से अधिक उपादान आर्य-तर संस्कृतियों से आए हैं ।<sup>६</sup>

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहां अन्य देशों ने अपने धर्म, सभ्यता व संस्कृति का सर्वोच्च लक्ष्य सांसारिक सुख व भोग की सामग्री प्राप्त करना समझ रखा है, वहां हमारा लक्ष्य सदैव त्याग का रहा है । धर्म, अध्यात्म, ईश्वर, जीव प्रकृति, परलोक, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक, कर्म, अकर्म, प्रारब्ध, पुरुषार्थ, नीति, सदाचरण, प्रथा, परंपरा, शास्त्र, दर्शन आदि मान्यताओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति मनुष्य के चरित्रवान, संयमी, कर्तव्य परायण, विवेकवान, उदार और न्यायशील बनने की प्रेरणा प्रदान करती है । हमारी संस्कृति हमें यह सिखलाती है कि संसार में जितनी भौतिक वस्तुएं दिखलाई पड़ती हैं उनका महत्व बहुत अधिक नहीं है, वे क्षणभंगुर हैं और किसी भी समय नष्ट हो सकती हैं । वास्तविक महत्व की चीज आत्मा-सत्ता या परमात्म तत्त्व ही है जो स्थायी और अविनाशी है । इसलिए मनुष्य को जब तक वह संसार में है, भौतिक वस्तुओं का संग्रह और उपभोग तो करना चाहिए, पर अपनी दृष्टि सदा उसी सत्य, आत्म-तत्त्व पर रखनी चाहिए जो सब भौतिक वस्तुओं का मूलधार है । इस भावना के प्रभाव से मनुष्य स्वाथान्ध होने से बस रहता है और वह अपने हित के साथ दूसरों के हित की रक्षा का भी ध्यान रखने में समर्थ होता है । व्यक्ति सामाजिक आदर्शों, मान्यताओं, विश्वासों तथा परंपराओं के अनुकूल कार्य करता है । हमारी संस्कृति देशवासियों में एकता को बढ़ाकर भावात्मक रूप से संगठित करने का कार्य करती है । साथ ही, मनुष्य प्रकृति को अपने अनुकूल ढालकर दुर्गम पड़ावों पर भी अपना मार्ग प्रशस्त करता है । आज जब सारे संसार की संस्कृति संस्कारविहीन होती जा रही है, मानव परमात्मा को नहीं समझता, आत्मा की पुकार नहीं सुनता, केवल प्रकृति की खोज, उसके विनाश और परिवर्तन में विश्वास कर भौतिक सुखों की प्राप्ति में तल्लीन है अथवा सर्वत्र भेद-भाव, स्वार्थ, पाखंड, छल-कपट, हिंसा और जोर-जबरदस्ती की विद्रूप सभ्यता में उतर आया है, तब भारतीय संस्कृति ही एक अंतिम समर्थ संस्कृति है जो विश्व को प्रकाश दे सकती है । अतः वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता पहले ही अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ जाती है ।<sup>७</sup>

: पादटीप :

१. दिनकर रामधारी सिंह, "संस्कृति के चार अध्याय ", लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद, २०१६, पेज नं.१

२. डॉ उदयपाल सिंह, " भारतीय संस्कृति ", विश्व भारती पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, २०१५, पेज न.३
३. अग्रवाल चंद्रमोहन," भारतीय संस्कृति की अस्मिता ", राहुल पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, मेरठ, २०१५, पेज न.१,२
४. मित्तल नेमीशरण, " प्राचीन सभ्यताएँ ", रिसर्च पब्लिकेशन, असम संस्करण, दिल्ली, २०१२, पेज न.२२९, २३१
५. दिनकर रामधारी सिंह, "संस्कृति के चार अध्याय ", लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद, २०१६, पेज न.३८
६. एजन - पेज न.८२
७. अग्रवाल चंद्रमोहन," भारतीय संस्कृति की अस्मिता ", राहुल पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, मेरठ, २०१५, पेज न.१७७,१७८
- 

प्रा.डॉ. मृगेश एम. नायक

( एसो.प्रो.ईन हिस्ट्री )

एम.एम.चौधरी आर्ट्स कॉलेज, राजेन्द्रनगर, ने.हाइवे.न.८

वाया-रायगढ़, ता.हिमतनगर, जि.साबरकांठा

६४, जैन एलर्टनगर, महाकाली मंदिर के निकट, महावीरनगर,

ता.हिमतनगर, जि.साबरकांठा, गुजरात, पिनकोड - ३८३००१

ईमेल : mmnayak18@gmail.com मो.९४२९१७९४०५